Turkish Online Journal of Qualitative Inquiry (TOJQI)
Volume 11, Issue 4, October 2020: 2628-2634
DOI: 10.53555/tojqi.v11i4.10273

Research Article

# ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में दार्शनिकता

प्रा.दिलखुश पटेल आचार्य[1]*

वैदिक साहित्य में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि का समावेश होता है । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद – यह चार वेदों की अनेक शाखाएँ है और उन हरेक शाखाओं के अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ हैं । महाभाष्य के अनुसार वैदिक संहिताओं की 1131(ग्यारह सौ इकत्तीस) शाखाएँ थी[2], इसलिए ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या भी 1131 होनी चाहिए । परन्तु दुर्भाग्यवश ब्राह्मण साहित्य वैदिक संहिताओं की तरह सम्पूर्ण नहीं मिलते । कुछ ब्राह्मण ग्रन्थ मिलते हैं तथा कुछ विलुप्त ब्राह्मण ग्रन्थों के यत्र तत्र उद्धरण मिलते हैं ।
ग्यारह सौ इकत्तीस ब्राह्मण ग्रन्थों में से आज केवल चौदह ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध हैं । जिसमें ऋग्वेद के दो, यजुर्वेद के दो, सामवेद के नौ और अथर्ववेद का एक ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध हैं ।
'ब्राह्मण' शब्द की निष्पत्ति 'ब्रह्म' शब्द के साथ तद्धितार्थक 'अण्' प्रत्यय के संयोग से हुई है । ग्रन्थ वाचक ''ब्राह्मण'' शब्द का प्रयोग महाभारत[3] के अतिरिक्त सर्वत्र नपुंसकलिङ्ग में हुआ है।[4]
सायणाचार्य का 'ब्राह्मण' शब्द के बारे में कथन है कि - ''जो परम्परा से मन्त्र नहीं वह ब्राह्मण है और जो ब्राह्मण नहीं वह मन्त्र है [5]।'' बौधायन धर्म-सूत्र में 'वाक्' को ब्राह्मण कहा है [6]। उवट तथा महिधर ने 'श्रुति' शब्द का अर्थ ब्राह्मण किया है [7]। ब्राह्मण ग्रन्थो में प्रयुक्त 'ब्राह्मण' शब्द 'ब्राह्मण ग्रन्थ' तथा 'सन्दर्भ विशेष' को द्योतित करता है[8]। वेबरने 'ब्राह्मण' शब्द का अर्थ 'प्रार्थना' किया है ।
उसके सिवा 'ब्राह्मण' शब्द का प्रार्थना, यज्ञ से सम्बन्धित परमार्थ विद्या विषयक गद्य-पद्य संग्रह, वेद मन्त्रो की विधि एवं विनियोगात्मक व्याख्या प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ तथा यज्ञ की विधि तथा वेद मन्त्रों की व्याख्या करने वाले ग्रन्थ आदि अर्थ किए है ।
ग्रन्थ वाचक ब्राह्मण शब्द के पर्याय के रूप में 'प्रवचन' तथा 'विज्ञायते' इन दो पदों का प्रयोग भी अनेकत्र हुआ है [9]। अष्टाध्यायी में 'अनु ब्राह्मण' शब्द का उल्लेख मिलता है ।[10]
ब्राह्मण ग्रन्थों में मुख्यतः याज्ञिक कर्मकाण्ड का निरूपण है । उसके साथ-साथ समाज, परिवार, राज्य, आर्थिक चिन्तन, दार्शनिक चिन्तन, तत्कालीन विविध ज्ञान-विज्ञान, पशु-पक्षी, वनस्पति आदि की चर्चा उपलब्ध होती है ।

## ऐतरेय ब्राह्मण –

ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेद की 'शाकल शाखा' से सम्बन्धित है । इसके रचयिता 'महीदास ऐतरेय' हैं । सायणाचार्य के मतानुसार महीदास की माता इतरा की महादेवी की उपासना से प्रसन्न महादेवी की कृपा से महीदास ने 'ऐतरेय ब्राह्मण' की रचना की ।[11]

---

[1]आचार्य व.ना.स.बेन्क लि.आर्ट्स एन्ड कोमर्स कॉलेज, वडनगर (हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी,पाटण)
[2]एक शतमध्वर्युः शाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेद एकविंशतिधा बाहवृच्यं नवधाथर्वणो वेदः । महाभाष्य पस्पशाह्निक ।
[3] य इमे ब्राह्मणाः प्रोक्ता मन्त्रा वै परीक्षणे गवाम्। महाभारत,उद्योगपर्व,अध्याय-13
[4] तै.संहिता,3.7.1, 3.1.9.; ऐत.ब्रा. 26.2, 29.2.
[5] ऋग्वेदभाष्य उपोद्घात ।
[6] वागिति ब्राह्मणमुच्यते । बौधायन धर्मसूत्र. 1.7.10
[7] वाजसनेयी माध्यन्दीन संहिता, 18.7
[8] तै.ब्रा. 3.12.5.10 ''तदेतत् पशुबन्धे ब्राह्मणं ब्रूयात् नेतरेषु यज्ञेषु'' यहाँ पर 'एतत् ब्राह्मणम्' शब्द पूर्व कथित सन्दर्भ की ओर संकेत कर रहा है तथा तै.ब्रा.1.2.5.43 'यदेते ब्राह्मणवन्तः पशवः आलभ्यन्ते' यहाँ पर 'ब्राह्मणवन्ते' पद से ब्राह्मण ग्रन्थ का बोध होता है ।
[9] आपस्तम्ब श्रोत सूत्र 2.5.2; आश्वलायनगृह्यसूत्र, 3.5.7; निरूक्त, 2.11, 2.12
[10] अष्टाध्यायी, 4.2.62
प्रस्तुत लेख में हम दोनों ब्राह्मण ग्रन्थ का सामान्य परिचय देगें , उसके बाद उपलब्ध दार्शनिकता की चर्चा करेगें।
[11] सायण भाष्य भूमिका, ऐतरेय ब्राह्मण, पृ-4-5

इस ग्रन्थ में चालीस अध्याय, आठ पंचिका तथा दो सौ पिच्चासी कंण्डिकायें है । प्रत्येक पंचिका में पांच अध्याय तथा प्रत्येक अध्याय में 6-12 तक कण्डिकायें है ।[12]
इस ब्राह्मण ग्रन्थ में सात होतृ नामक ऋत्विजों के कार्यो का विशेष वर्णन किया गया है । प्रथम तथा द्वितीय पंचिका में 'अग्निष्टोम' याग में होतृ के विधि विधानों तथा कर्तव्यो का विस्तृत वर्णन है । तृतीय तथा चतुर्थ पंचिका में प्रातः, माध्यन्दिन तथा साँय हवन के समय प्रयुज्यमान शास्त्रों का वर्णन मिलता है । पंचम पंचिका में द्वादशाह यागों का तथा षष्ठ में कइ सप्ताह तक चलने वाले सोमयाग का, सप्तम पंचिका में राजसूय यज्ञ का, अष्टम पंचिका ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । अन्तिम अध्याय में पुरोहित का धार्मिक तथा राजनैतिक महत्त्व प्रतिपादित किया गया है ।

## कौषीतकि ब्राह्मण –

''कौषीतकि ब्राह्मण'' ऋग्वेद की 'अनुपलब्ध शांखायन शाखा' से सम्बन्धित है ।[13] इस समय शांखायन शाखा के दो ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध है – कौषीतकि ब्राह्मण तथा शांखायन ब्राह्मण । मैक्डोंनल, विण्टरनित्ज, मार्टिन, कीथ आदि विद्वान दोंनो ब्राह्मण ग्रन्थोको एक ही मानते है ।
इस ब्राह्मण ग्रन्थ के रचयिता के बारे में भिन्न भिन्न मत है । कई शांखायन आचार्य को मानते है, तो कई कौषीतकि आचार्य को मानते है, तो कई इन दोंनो से भिन्न अन्य कोई आचार्य को मानते हैं ।
यह ब्राह्मण ग्रन्थ तीस अध्यायों में विभक्त है । उसमें कुल 276 खण्ड है । उसमें प्रथम छः अध्यायों में अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास आदि यज्ञों का विवेचन है । सातवें अध्याय से तीसवें अध्याय तक सोमयज्ञों का विस्तृत विवेचन किया गया है ।
दार्शनिक चिन्तन की धारा का प्रथम दर्शन वैदिक संहिताओं की दार्शनिक परम्परा ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों के माध्यम से उत्तरोत्तर विकिसत हुई । जिसमें से हमारे सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक आदि दर्शन विकसित हुए । परन्तु परवर्ती आस्तिक दर्शन का मूल उनमें अवश्य विद्यमान है ।
ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में दार्शनिक सिद्धान्तो के रूप में सृष्टि विज्ञान, स्वर्ग लोक या मोक्ष, पुरुष, आत्मा, प्राण, वाक् आदि विविध विषयों और उस तत्त्वों के साथ-साथ सदाचार के गुणों का चिन्तन किया गया है ।
याज्ञिक कर्मकाण्ड का सम्पादन जीवन के उच्च आदर्श और नैतिक प्रतिष्ठा के लिए किया जाता है । समाज में नैतिक उच्च आदर्शो का पालन करने वाला व्यक्ति को ही सन्मान मिलता है । मै मानता हुँ कि सत्य, तप, श्रद्धा, उदारता आदि गुणो से युक्त व्यक्ति में ही दार्शनिक जिज्ञासा उत्पन्न होती है । इस लिए हम ऋग्वेदीय ब्राह्मण में निरूपित सत्य, श्रद्धा, श्रम, तप, पवित्रता, दान, प्रायश्चित, आतिथ्य आदि नैतिकता के उच्च आदर्शरूप गुणो पर दृष्टिपात करेगें । श्रीमद्भगवद्गीता में भी 16 में अध्याय में गीताकार ने दैवी-आसुरी संपद का निरूपण करते हुए – दैवी संपदवाले व्यक्ति ही समाज और राष्ट्र की उन्नति कर सकते है ऐसा अपना मत व्यक्त कीया है ।[14]
**सत्य** – जो बात जैसी है उसको वैसा ही कहना सत्य है । मनुष्य राग-द्वेष आदि द्वन्द्वो में मोहवश असत्य को अपना लेता है, परन्तु देव सत्य का त्याग नहीं करते। अतः कहा गया है कि देव सत्य है तथा मनुष्य असत्य है ।[15] यज्ञ करने वाले को सत्य को अपनाना पड़ता था ।[16] यज्ञ की दीक्षा लेने पर तो अनिवार्य रूप से सत्य बोलने का व्रत लेना होता था ।[17]
ऐतरेय ब्राह्मण' में सत्य की महिमा को बताने के लिए आख्यान में कहा गया है कि मनु के पुत्र नामनेदिष्ठ को सत्य बोलने के कारण एक सहस्र का लाभ हुआ ।[18] इसलिए हमारे धर्मषास्त्र में कहा गया है-'सत्यं वदः ।'
**श्रद्धा** – श्रद्धा का अर्थ है श्रत सत्यं दधाति इति श्रद्धा, सत्य के साथ श्रद्धा का अटूट सम्बन्ध है । कहा गया है कि श्रद्धा पत्नी है और सत्य यजमान । इन दोनों का उत्तम मिथुन है । इन दोनों से स्वर्गलोक को जीता जा सकता है[19]।

---

[12] त्रिशच्चत्वारिंशता ब्राह्मणे संज्ञायांऽण् । अष्टाध्यायी, 5.1.12
[13] कौषीतकि ब्राह्मणाञ्च शाखा शांखायनीस्थिता । चरणव्युह.2 कण्डिका
[14] श्रीमद्भगवद्गीता,अ-16-1,5.
[15] सत्य संहिता वै देवा अनृत संहिता मनुष्याः।। - ऐत.ब्रा.,1.6.
[16] ऐत.ब्रा., 32.10.; कौ.ब्रा.,2.8.
[17] दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम् । ऐत.ब्रा., 1.6.
[18] ऐत.ब्रा., 22.9.
[19] श्रद्धापत्नी सत्यं यजमानः श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तमं मिथुनम् सत्येन मिथुनेन स्वर्गांल्लोकान्जयति ।। ऐत.ब्रा.,7.4.

श्रद्धापूर्वक यज्ञ करने वाले का इष्ट क्षीण नहीं होता [20]। सत्य श्रद्धापूर्वक जो विद्वान अग्निहोत्र करता है वह यज्ञ की समृद्धि को प्राप्त कर लेता है ।[19]

**श्रम -** सत्य और श्रद्धा श्रम को जन्म देते हैं । ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में श्रम का पर्याप्त महत्व प्रतिपादित किया गया है । देवता श्रम, तप और यज्ञ करते है तभी उनको स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।[21] शुनःशेप आख्यान में श्रम की महिमा कि है ।[21]

**तप** – तप की महिमा अन्नत है । मनुष्यों की तो बात ही क्या स्वयं प्रजापति को भी सृष्टि सृजन हेतु तप करना पड़ा था ।[22] देव भी किसी कार्य की सिद्धि के लिए तप करते थे ।[23]

**पवित्रता** – पवित्रता याज्ञिक कर्मकाण्ड के लिए प्रथम अनिवार्य शर्त थी । पवित्रता के लिए अन्य व्रतों का भी संकेत मिलता है । एक स्थान पर उल्लेख है कि अपवित्रता के कारन हवि को देवता भी ग्रहण नहीं करते ।[24] नियम हीन कुवक्ता का पराभव निश्चित था ।[25]

**दान** – दान यज्ञ की समृद्धि का कारण बताया गया है ।[26] दान देना प्रतिष्ठा का हेतु था ।[27] ऋग्वेद के अनुसार दान देने वाला अमृत को प्राप्त करता है । श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार भूमिदान, गोदान, अन्नदान आदि सर्व दान से अभयदान श्रेष्ठ है । जो हमें यज्ञ याग से उनकी प्राप्ति होती है ।

इस तरह सत्य, श्रद्धा, तप आदि गुणों का यज्ञ में महत्त्व है । ऋग्वेदीय ब्राह्मणो में यज्ञों का विशेष महत्त्व है और यह यज्ञीय कर्मकाण्ड स्वर्ग की प्राप्ति के लिए प्रायः होता था । स्वर्ग की प्राप्ति को ही वेद में मोक्ष कई जगह बताया है । इस लिए हम यह कह सकते है कि नैतिक गुणों और दार्शनिक तत्त्वों को समजना जिज्ञासु के लिए बहुत जरूरी हैं ।

**ऋग्वेदीय ब्राह्मण की दार्शनिकता** –

**सृष्टि विज्ञान** –

ऋग्वेद काल से सृष्टि के निर्माण और उसके कर्ता के बारे में जिज्ञासा थी और इस जिज्ञासा का समाधान का प्रयत्न भी उसी समय से चल रहा है । वैदिक संहिताओं में प्रजापति (परमेश्वर) को ही इस सृष्टि का निर्माता और रहस्यज्ञाता माना गया है ।[28] प्रजापति ने अव्यक्त मूलप्रकृति(असत्) से यह व्यक्त सृष्टि की;[29] इसी कारण वह विश्वकर्मा कहलाया ।[30] सृष्टि के लिए सर्वप्रथम प्रजापति ने कामना की और तप तपा ।[31] ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति ने उषा में रेतस् का सिञ्चन किया । सिञ्चित रेतस् एक सरोवर के रूप में एकत्रित हो गया । अग्नि ने उसे तपाया तथा वायु ने सुखाया वह रेतस् पिण्डीभूत् होकर फट गया । फटने पर उससे विभिन्न प्रकार की चिनगारियाँ निकली। इन चिनगारियो से विविध सृष्टि हुई ।[32]

कौषीतकि ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति ने सृष्टि की कामना से तप करके, अग्नि,वायु, आदित्य, चन्द्रमा और उषा को उत्पन्न किया ।[33] प्रजापति ने सृष्टि हेतु जो तप तपा वह भी यज्ञ माना गया है । प्रतीत होता है कि प्रजापति ने सृष्टि के लिए ही यज्ञ संस्था का विकास किया था और स्वयं ही यज्ञ रूप हो गया था-‘यज्ञो वै प्रजापति’।[34] सृष्टि के मूलाधार यज्ञ ही है ।[35]

---

[20] य श्रद्धधानों यजते तस्येष्टं न क्षीयते । कौ. ब्रा.,7.4.   19. कौ.ब्रा.,2.8.
[21] देवा वै यज्ञं न श्रमेण तपसाऽहुतिभिः स्वर्गं लोकमजयन् । ऐत.ब्रा.,7.3. 21. ऐत.ब्रा.,33.3.
[22] प्रजापतिरकामयत प्रजायेय भूयान्स्यामिति स तपोऽतप्यत । ऐत.ब्रा.,19.1.,25.7.
[23] कौ.ब्रा.,6.1.
[24] न वा अव्रतस्य देवा हविरशनन्ति । कौ.ब्रा.,3.1.; ऐत.ब्रा.,33.9.
[25] कौ.ब्रा.,27.1.
[26] यज्ञस्वैव समृद्ध्यै द्वादश दद्यात् । कौ.ब्रा.,1.1.
[27] प्रतिष्ठित्याथ यत्प्रथमजां गां ददाति ।। वही,5.2.
[28] ऋग्वेद, 10.129.7.,10.81.5; अथर्ववेद,10.2.24.;10.7.8.
[29] प्रजापतिः प्रजाः असृजत् । ऐत.ब्रा.,13.12.
[30] प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा विश्वकर्मा अभवत् । वही,18.8.
[31] प्रजापति प्रजातिकामस्तपोऽतप्यत । कौ.ब्रा.,6.1,6.10.;ऐत.ब्रा.,10.1,19.1.
[32] ऐत.ब्रा.,13.9.
[33] . कौ.ब्रा. , 6.1.
[34] . वही,10.1.,13.1.; ऐत.ब्रा.,19.4.
[35] . यज्ञाद्वै प्रजा....अन्ततो यज्ञस्येमाः प्रजा प्रजायन्ते । वही,1.9.,1.5.

कौषीतकि ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति ने सृष्टि यज्ञ का निर्माण किया । उसने अग्न्याधेय से रेतस् को उत्पन्न किया । अग्निहोत्र से देवताओं, मनुष्यों और असुरों को उत्पन्न किया । दर्शपूर्णमास से इन्द्र को । यज्ञों से ही अन्न-पान उत्पन्न किये, अन्न को आग्रायण यज्ञ से उत्पन्न किया । इनके अतिरिक्त जिन-जिन वस्तुओं की कामना की उन सबको यज्ञों से ही प्राप्त किया ।[36]

प्रजापति ने पृथिवी से अग्नि, अन्तरिक्ष से वायु, द्यु लोक से आदित्य की सृष्टि की इसके बाद अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद तथा आदित्य से सामवेद की सृष्टि हुई । इन तीन वेदों से तीन व्याहृतियां उत्पन्न हुई ऋग्वेद से भूः, यजुर्वेद से भुवः, सामवेद से स्वः । इन तीन व्याहृतियों से क्रमशः अ उ तथा म ये तीन वर्ण उत्पन्न हुए । प्रजापति ने इन तीन वर्णो का संयोग किया तब ओम्(प्रणव) की उत्पन्न हुई ।[37]

ऐतरेय ब्राह्मण में पृथिवी से अग्नि की उत्पत्ति सर्वप्रथम बताई गई है।[38] बाद में पृथिवी पर औषधियों और वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई ।[39]

प्रजापति ने पृथिवी के सृजन के बाद अन्तरिक्ष तथा द्युलोक की सृष्टि की ।[40] अन्तरिक्ष से वायु की तथा द्यु लोक से आदित्य की उत्पत्ति की ।[41] अन्यत्र विवरण के अनुसार आदित्य की सृष्टि, प्रजापति के उषा में सिञ्चित, सरोवर रूप में एकत्रित, पिण्डीभूत रेतस् के फटने पर, उसके प्रथम उद्दिप्त भाग से हुई थी ।[42]

ऐतरेय ब्राह्मण में अन्तरीक्ष और द्यु लोक से सम्बन्धित तत्त्वों की सृष्टि के विवेचन में स्थुल पदार्थो का सूक्ष्म में पर्यवसान तथा उन सूक्ष्म पदार्थो से स्थूल की सृष्टि बताई गई है ।

अन्त में हम यह कह सकते है कि ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में विद्यमान समग्र सृष्टि का कर्ता प्रजापति ही है । जिसने पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यु लोक, अग्नि, वायु, आदित्य, उषा, सरोवर रूप जल, चार वेद, प्रणव, औषधियाँ, वनस्पति, हर प्रकार के पशु आदि को उत्पन्न किया था ।

**स्वर्ग लोक** –

मनुष्य का अन्तिम ध्येय परमतत्त्व की प्राप्ति है । जिसे हम मोक्ष या मुक्ति कहते है । दुःखो से मुक्ति को ही प्रायः दर्शन मोक्ष मानते है । वेदो में अमृतत्व की प्राप्ति को ही मोक्ष मानते है ।

मुक्ति पांच प्रकार की होती है ।

1. सालोक्य मुक्ति- परमात्मा जीस लोक में रहते है उस लोक की प्राप्ति इस में होती है । जैसे – जटायु
2. सारूप्य मुक्ति - परमात्मा के समान रूप प्राप्त करना, जैसे-पौण्डवासुदेव ।
3. सायुज्य मुक्ति - परमात्मा के साथ जूड़ जाना, जैसे – मीराबाई ।
4. कैवल्य मुक्ति - परमात्मा में मिलत हो जाना, जैसे – शिशुपाल ।
5. सामीप्य मुक्ति – परमात्मा के साथ रहना, जैसे – ध्रुव ।

यज्ञ याग से हमें सालोक्य मुक्ति मिलती है ।

आलोच्च ब्राह्मण साहित्य का समस्त कर्मकाण्ड जीव को दुःखो से मुक्त कराकर परमानन्द की प्राप्ति के लिए ही प्रवृत्त हुआ है । ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में स्वर्ग को ही एक ऐसा स्थान बताया है की जिसकी प्राप्ति के अनन्तर दुःखो की निवृत्ति सम्भव थी और जीव अमृतत्त्व को प्राप्त कर लेता था ।[43] केवल मनुष्य ही नहीं देवों भी स्वर्ग की प्राप्ति के लिए सचेष्ट रहते थे । कौषीतकि ब्राह्मण का तो प्रारंभ ही देवों की स्वर्ग गमन परिचर्या से होता है ।[44]

---

[36] . प्रजापतिर्ह यज्ञं ससृजे सोऽग्न्याधैयेनैव रेतोऽसृजत । देवान् मनुष्यानसुराननिति-अग्निहोत्रेण । दर्शपूर्णमासाभ्यामिन्द्रमसृजत । तेभ्य एतदन्नपानं ससृज...अथो यं यं काममैच्छतस्तं एतरयनैरापुः । अन्नाद्यमाग्रायणेन । - कौ.ब्रा.,6.15.

[37] . ऐत.ब्रा.,25.7.,कौ.ब्रा.,6.10.

[38] . ऐत.ब्रा., 25.7.

[39] . अलौमिकेवाग्र आसित् सैतं मन्त्रमपश्यदाऽयं गौः ....किञ्चौषधयो वनस्पतयः सर्वाणि रूपाणि । वही,24.4.

[40] . कौ.ब्रा., 3.9.

[41] . ऐत.ब्रा.,25.7.

[42]. वही , 12.9.

[43] . यजमानः सर्वमायुरस्मिल्लोक सत्याप्नोति-अमृतत्वमक्षिति स्वर्गे लोके । कौ.ब्रा.,13.5,13.9,14.4.

[44]. ऐत.ब्रा.,38.8.

विभिन्न यज्ञ और उनमें क्रियमाण अवान्तर क्रियाओं का चरम उद्देश्य स्वर्ग प्राप्ति ही है ।[45] अतः कहा गया है कि स्वर्ग की कामना वाला यज्ञ करे ।[46] यज्ञीय अग्नि स्वर्ग लोक की प्राप्ति कराता है ।[47]

स्वर्ग प्राप्ति की इस अभिलाषा के मूल में दो तथ्य दृष्टिगोचर होते है । एक तो जन्म मरण रूप दारुण दुःखो से मुक्त होकर अमृत की प्राप्ति[48] तथा द्वितीय नित्य आनन्दमय सुखोपभोग के उपकरणों की प्राप्ति । इस तथ्य का अनेकश उद्घाटन हुआ है कि याज्ञिक इस संसार में क्रियमाण कर्म का फल परलोक में प्राप्त करता है ।[49]

स्वर्ग के स्वरूप के विषय में अनेक मनोरम कल्पनायें की गइ हैं । स्वर्ग लोक की संख्या में सात और नौ बताये गये हैं ।[50] सायणाचार्य सुखोपभोग की विभिन्नता के कारण स्वर्ग लोकों की विभिन्न संख्या बताते हैं ।[51]

निष्कर्ष रूप में प्रतिपादित किया जा सकता है कि दुःखों से आक्रान्त प्राणी सुख की प्राप्ति हेतु चेष्टा करता है, उस चेष्टा स्वरूप जिस क्रियमाण कर्म से वह आनन्द का अनुभव करता है, उसी की स्वर्ग रूप में कल्पना ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में की गयी है ।

**पुरूष** –

आलोच्य ब्राह्मण साहित्य में पुरूष को यज्ञ का प्रतीक मानकर[52] शरीर में विद्यमान आत्मा, प्राण, इन्द्रिय, वाक्, मन आदि के विषय में विशदता से विवेचन किया है । यज्ञ के प्रतीक रूप में वर्णन करते हुए प्रतिपादीत है कि जिस प्रकार यज्ञीय सामग्री सहित ब्रह्मा, होता, उद्गाता ओर अध्वर्यु भौतिक पार्थिव यज्ञ को सम्पन्न करते है, उसी प्रकार से मानव शरीर में भी एक सूक्ष्म अन्तर्यज्ञ होता रहता है । जिसमें आत्मा यजमान है और यह पुरूष यज्ञ उसी के द्वारा सम्पन्न होता है । प्राण से ही शरीर धारण होता है, अतः यह प्राण अपने को अपान, व्यान, उदान और समान में विभक्त करके पुरूष यज्ञ का सम्पादन करता है । पार्थिव यज्ञ में जो-जो क्रियाएँ की जाती है, उन सबको आत्मा, मन व प्राण की सहायता से सपन्न करके अपने अभीष्ट की प्राप्ति करता है ।[53]

पुरूष को यज्ञ का प्रतीक मानकर ही ऊर्ध्वप्राण को प्रातःहवन, आत्मा को माध्यन्दिन हवन और शेष वाक् आदि को सायं हवन प्रतिपादित किया है ।[54]

अन्यत्र दस हाथ और दस पैर की अंगुलियों के साथ आत्मा की गणना करके पुरूष के इक्कीस अंगों की ओर संकेत किया है ।[55] इसी प्रकार लोम, त्वचा, मांस, अस्थि और मज्जा के संयाग से पुरूष को 'पांक्त' कहा गया है ।[56]

ऋग्वेद के पुरूषसूक्त में भी यज्ञपुरूष की कल्पना की गई है और यज्ञपुरूष से जगत की उत्पत्ति मानी गई है ।

**आत्मा** –

सृष्टि सृजन रूप यज्ञ में जो स्थान परमतत्त्व की 'ईक्षणता' अथवा 'कामना' का है । वही स्थान भौतिक देह में आत्मा का है । यही इसको गति प्रदान करता है, 'ऐतरेय ब्राह्मण' में साम और ऋक् द्वारा विराट् की सृष्टि के प्रसंग में स्तोत्रिय अथवा गतिदाता को आत्मा कहा गया है ।[57] अन्यत्र सृष्टि सृजन रूप यज्ञ में आत्मा को महाहवि विशेषण से द्योतित किया गया है ।[58]

---

45 .ऐत.ब्रा.,2.5,15.2,18.7.
46 .स्वर्गकामो यजेत् । कौ.ब्रा.,4.11.1
47 . वही, 2.7.
48 .वही, 13.5, 13.9, 14.4.
49 . ऐत.ब्रा., 12.12,32.9.
50. वही, 22.5,18.2.
51. (क) उत्तम भोग स्थान विशेषा सप्त संख्यका स्वर्गोः । - वही, सायण भाष्य 22.5.
(ख) नवभोग स्थान भेदेन नव निधाः । - वही, 18.2.
52. कौ.ब्रा.,17.7,25.3,28.9.
53. कौ.ब्रा.,17.7.
54. वही, 25.3.
55. ऐ.ब्रा., 4.2.
56. वही, 30.3.
57. वही, 12.12.
58. कौषी. ब्रा., 1.5.

आत्मा को छः अंगों से युक्त कहा गया है । आत्मा शरीर के माध्यम से ही कार्य का निष्पादन करता है । अन्यत्र आत्मा को चौबीस तत्त्वों से युक्त स्वयं पच्चीसवाँ कहा गया है ।[59] ऐतरेय आरण्यक में आत्मा और प्रजापति दोनों को पच्चीस तत्त्वो से युक्त माना है ।[60] इस विवेचन से परमतत्त्व के साथ आत्मा का अद्वैत सम्बन्ध सिद्ध है ।

**प्राण** –

सृष्टि सृजन रूप यज्ञ के मूल में प्राण तत्त्व ही विद्यमान है । प्राण ही जगत् को प्रज्वलित करता है । सम्पूर्ण विश्व प्राण का ही समिन्धन है । ब्राह्मणकार का मत है कि जहाँ पर प्राण शक्ति विद्यमान है वहाँ मृत्यु का प्रवेश नहीं हो सकता ।[61] सविता जिस प्रकार संचरणशील जगत् का प्रेरक है, उसी प्रकार प्राण शरीर और सम्पूर्ण पदार्थो का प्रेरक है ।[62] यह प्राण शक्ति ही सम्पूर्ण जगत की प्रेरणा का मूल है ।

**वाक्** –

प्राण तत्त्व का आधारभूत वाक् तत्त्व है । प्राण भरत कहे जाते हैं और वाक् भारती है, क्योंकि वाक् द्वारा प्राणों का भरण होता है ।[63] वाक् तत्त्व की महत्ता को इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है कि – पुरुष प्राण अथवा अपान से प्राणवान् अथवा अपानवान् नहीं, अपितु वाक् से है, क्योंकि वह प्राण अपान से वाक् को प्राप्त होकर वाङ्मय हो जाता है । आत्मा चक्षु, श्रोत्र, मन आदि से वाक् को प्राप्त होकर वाङ्मय हो जाता है ।[64]

वाक् तत्त्व जीव मात्र के लिए सर्वोत्कृष्ट ज्योतितत्त्व है, सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि ज्योति तत्त्वों के अस्त होनें पर वाक् रूप ज्योतितत्त्व ही कार्य साधक होता है ।[65] आलोच्य ब्राह्मण साहित्य में वाक् को ब्रह्म रूप में प्रतिपादित किया है ।[66] यह ब्रह्म रूपा वाक् दीक्षा है । इस वाक् दीक्षा से देव रूपी प्राण दीक्षित होकर सभी कामना होकर सभी कामनाओं को परिग्रहण करके अपने में धारण करते हैं । इसी कल्याण कारिता शक्ति के कारण वाक् को पथ्यास्वस्ति[67] और विश्वमित्र[68] नाम से अभिहित किया गया है । वाक् रसनेन्द्रिय से प्रकट होने और स्वादिष्ट अन्न को खाने से सरस्वति है ।[69]

इस विवेचन से वाक् के लौकिक तथा अलौकिक स्वरूप दर्शन के साथ-साथ उसकी सृजन क्षमता और नियंत्रक शक्ति का भी आभास मिलता है । ज्ञात होता है कि वाक् तत्त्व दो रुपो में दिखाई देता है । एक को हम परा और दुसरे को अपरा कह सकते है । अपरा स्थूल शब्दमयी वाक् है जो बुद्धि का स्पर्श करती है किन्तु परावाक् मूल अक्षर तत्त्व है,जो हृदय का स्पर्श करती है या हृदय में प्रकट होकर अपनी शक्ति से जीवन का निर्माण करती है । इसी अक्षर वाक् से गायत्री आदि सप्त छन्दो का विकास होता है ।[70]

इस तरह ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थो में सृष्टि कि उत्पत्ति, विकास, स्वर्ग लोक, पुरुष, आत्मा, प्राण, वाक् आदि का निरूपण दार्शनिक विचारधारा का उद्गम रूप हैं ।

---

59. आत्मा वै पंचविश । वही , 17.17.
60. पंचविश आत्मा पंचविश प्रजापतिः । दशहस्त्यांगुलयो दशपाद्या द्वुवावुरु द्वौ बाहु । आत्मैव पंच विशः । - ऐतरेयारण्यक, 1.1.4.
61. ऐत. ब्रा.,3.2.
62. वही, 3.5.
63. वही, 8.6.
64. कौ. ब्रा. , 2.7.
65. अस्तमित आदित्य याज्ञवल्क्य चन्द्रमत्स्यास्तमितेशान्तेऽग्रो किं ज्योतिरेवायं पुरुष इति वाग्रेवास्य ज्योतिर्भवति । -- बृहदारण्यकोपनिषद् ,4.3.5.
66. ऐत.ब्रा.,7.5,18.7,26.3.
67. कौ.ब्रा.,7.6.
68. वही, 10.5.
69. ऐत.ब्रा. ,11.1, 11.2,13.3.,कौ.ब्रा.,12.8.
70. वही, 7.7.

## सन्दर्भ ग्रन्थ


1. ऐतरेय ब्राह्मण, सायण भाष्य सहित, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि, 1930
2. ऐतरेय ब्राह्मण, सायण भाष्य सहित, सं. सत्यव्रत सामश्रमी,कलकत्ता, 1952
3. ऐतरेय ब्राह्मण, हिन्दी अनुवाद, गंगाप्रसाद उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत-2006
4. कौषीतकि ब्राह्मण, सं. इ.बी.काबल, वाराणसी, 1968
5. अथर्ववेद भाषा भाष्य, क्षेमकरण दास त्रिवेदी, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, संवत-2030
6. ऋग्वेद भाष्य उपोद्घात, वैदिक संशोधन मंडल,पूना, 1933
7. तैत्तिरीय संहिता, सातवलेकर, अनन्तशास्त्री मुद्रणालय, पारडी, 1957
8. वाजसनेयी संहिता, महीधर भाष्य, सं. ए.वेबर. , निर्णय सागर प्रेस संस्करण, बम्बई, 1912
9. तैत्तिरीय ब्राह्मण, सायण भाष्य, आनन्द आश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, 1934
10. ऐतरेय आरण्यक- सायण टीका आनन्दाश्रम,पूना, 1940
11. आपस्तब श्रोतसूत्र, सं. आरगारवे , कलकत्ता, मैसुर,1945
12. आश्वलायन गृह्यसूत्रम्, सं. भवानी शंकर शर्मा,बम्बई, 1909
13. बौधायन धर्मसूत्र-मस्करी भाष्य, विवरण-गोविन्द स्वामी, चौखम्भा संस्कृत
14. सीरीज, चरणव्युहसूत्र- महीदास, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 1938
15. अष्टाध्यायी, रामलाल कपूर ट्रस्ट गुरु बाजार, अमृतसर,1969
16. निरुक्त, डॉ. वसन्त भट्ट, सरस्वती पुस्तक भंडार, अहमदाबाद
17. महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर
18. महाभाष्य, डॉ. कमलेश चोकसी, स.पु.भंडार, अहमदाबाद.
19. श्रीमद्भगवद्गीता,(संजीवनी टीका समेत), गीता प्रेस, गोरखपुर.